घुन

बसंत त्रिपाठी

हिन्दी ADDA

घुन

किर्र...किर्र...किर्र...किर्र...

लकड़ी के दीवान के भीतर घुन अपना काम किए जा रहा था और साहिब सिंह की नींद छिटक कर कोसों दूर जा चुकी थी।

आज उसने तय कर रखा था कि कम-से-कम सात घंटे बेहोशी की हद तक, नींद में डूब जाएगा, और इसका उसने बाकायदा इंतजाम भी किया था। तली मछली, बासमती चावल का वेज पुलाव, दाल तड़का, बटर चिकन और ह्विस्की का क्वार्टर... यानी नींद को घेरने की मजबूत नाकेबंदी। हर पेग के बाद साहिब ने सिगरेट के लंबे-लंबे कश लिए। निकोटिन शराब के नशे को बढ़ा देती है, वह जानता था। उसके बाद आदत के विरुद्ध भारी खाना। नशा बढ़िया हुआ। पलकें डूब रही थीं। नींद की छुअन को वह महसूस कर रहा था। नींद से भारी हुए कदमों को घसीटता हुआ वह बेडरूम में घुसा। बत्ती बंद की। बस नींद के नीले, गुनगुने जल में वह गोता लगाने ही वाला था कि किर्र...किर्र...किर्र...किर्र...

साहिब ने पहलू बदला। गोल तकिए को पैरों के बीच दबाया। ध्यान बँटाने के लिए कई तरह की फैंटेसियों के दरवाजे खटखटाए, लेकिन कोई दरवाजा नहीं खुला। शराब अपना काम कर रही थी, यानी पूरे शरीर को बंधन-मुक्त बनाए दे रही थी, लेकिन नींद थी कि कमबख्त किर्र-किर्र के डर से भागती गई, भागती गई और अंततः ओझल हो गई। साहिब ने एक भद्दी-सी गाली दी और लाइट ऑन कर दी। शराब अब उसके सिर पर चढ़ कर दर्द की गाँठें खोलने लगी थी।

नींद से हार की यह तीसरी रात थी। पिछली तीन रातों से घुन दीवान को ही नहीं, उसके दिमाग को भी चबाए जा रहा था।

उसके पास अपने दिल और दिमाग को बचाने का कोई उपाय नहीं था। यह उपाय तो उसे बताया ही नहीं गया था। उपायों को तलाशने की उसे मोहलत ही नहीं मिली थी। बस अचानक आक्रमण और फिर लगातार आक्रमण...।

साहिब सिंह ने अनमने ढंग से अपना लेपटॉप खोला और दुनिया की चुनिंदा विज्ञापन फिल्मों को देखने लगा। बीस सेकंड से ले कर एक-डेढ़ मिनट की ये फिल्में अपने दर्शकों को उपभोक्ता में बदल देने की काबिलियत रखती थीं। एक कार की फिल्म पर उसकी नजर थम गई। ग्राफिक्स का इतना बेहतरीन इस्तेमाल कम ही फिल्मों में हुआ है। फिल्म में एक कार अचानक एक रोबोट में तब्दील हो कर तेज धुन में थिरकने लगती है और धीरे-धीरे उसका नृत्य उन्माद के चरम पर पहुँच जाता है। ऐसी फिल्में यदि नए उपभोक्ताओं को खींच लाती हैं तो ये तो उनका अधिकार है... अपने काम के पक्ष में साहिब सिंह ने अपना बयान दिया। बिना ऐसे विश्वासपूर्ण बयान के वह अपने काम को खूबसूरती से अंजाम भी नहीं दे सकता था क्योंकि वह भी तो इसी दुनिया का एक चमकता नाम था।

बस, उसे खल रही थी तो एक ही बात, कि नींद उसके साथ क्यों बेवफाई कर रही है? आखिरकार उसने नींद का क्या बिगाड़ा था? नींद की याद आते ही उसकी बेचैनी फिर बढ़ गई।

केवल तीन साल में इतनी तरक्की... विज्ञापन की दुनिया का एक जरूरी नाम... कई तरह के कलाकारों से उत्पाद के अनुसार काम लेनेवाला... एक पॉश इलाके में डबल बेडरूम का बेहतरीन फ्लैट... लेकिन फिलवक्त एक छोटी-सी नींद से बेदखल... नींद क्यों रात भर नहीं आती!

गालिब की यह पंक्ति जब उसे याद आई तो वह बच्चों की तरह चहक उठा... कितने दिनों बाद उसे प्रोफेशनल पढ़ाई के पहले के दौर का पढ़ा हुआ कुछ याद आ रहा था!

रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। बाल्कनी से उसने देखा कि शहर की सड़कें तक ऊँघ रहीं थीं। पीली रोशनी ने लिहाफ की तरह शहर को ढाँक लिया था। अस्पताल और एटीएम के साइन-बोर्ड चमक रहे थे। अस्पताल के बाहर एक चायवाला स्टोव की नीली लौ के ऊपर चाय की केतली चढ़ाए हुए था। कुछ अकेले और उदास लोग फाइवर के स्टूल पर बैठे अपने-अपने दुखों में डूबे हुए थे। ऑटोरिक्शा की पिछली सीट पर उसके ड्राइवर पैर मोड़ कर आधी-अधूरी नींद में खोए हुए थे। यानी जो जाग रहे थे उनके पास जगने का मकसद था। सोनेवाले के पास सोने की सुविधा थी। लेकिन वह, मकसद और सुविधा से जुदा, केवल इसलिए जाग रहा था क्योंकि नींद ने उसके साथ बेवफाई की थी। उसने कभी सोचा भी नहीं था कि अनिद्रा उसे भी परेशान कर सकती है, कम-से-कम उम्र के बत्तीसवें साल में तो कतई नहीं। जीवन से वह बिल्कुल असंतुष्ट नहीं था। बचपन का अभाव और अट्ठाइस शुरू होते-होते संपन्नता का मजेदार स्वाद... असंतुष्टि का कोई कारण ही नहीं था। फिर भीतर ऐसा कौन-सा नामालूम फोड़ा पक रहा था जिसकी टीस उसे सोने नहीं दे रही थी !

उत्तर वह नहीं जानता था। वह फिलहाल इतना जान रहा था कि नींद तो अब उसे आने से रही। खैर, इसकी खानापूर्ति तो वह ऑफिस में काम की व्यस्तता से एक-दो घंटे चुरा कर कर लेगा। यह सोचते हुए उसे अच्छा लगा।

अच्छा लगना अब कितना कम हो गया था। कितना कम हो गया था साहिब का खुद अपने बारे में सोचना। दरअसल इस नई दुनिया में सोचना ही कम हो गया था। किसके पास फुर्सत थी इस बेकार से काम के लिए !

सुबह लगभग नौ बजे वह दफ्तर पहुँच गया। एक बहुमंजिली इमारत के सोलहवें माले में उसका दफ्तर था - 'न्यू एरा एड एजेंसी'। समय से लगभग दो घंटे पहले वह ऑफिस पहुँच गया था इसलिए साफ-सफाई करनेवाले के अतिरिक्त वहाँ कोई नहीं था।

- क्यों संतोष, सफाई हो गई? और तुम मेरी कुर्सी अच्छे से साफ क्यों नहीं करते, पूरी कुर्सी पर धूल जमी होती है?

- करता तो हूँ साब, फिर से जम जाती होगी, मुंबई में भोत धूल है...

- अच्छा, टेबिल में, कंप्यूटर में, और किसी के कमरे में धूल नहीं जमती, केवल मेरे कमरे की कुर्सी पर ही फिर से जम जाती है?

संतोष चुप रहा लेकिन उसकी आँखों में एक पल के लिए ऐसा भाव आया, जिसे साहिब जानता तो था लेकिन मानता नहीं था।

- जा मेरे लिए एक कप कॉफी ला, और हाँ, हाथ अच्छी तरह से धोना।

संतोष ने सिर हिलाया और बॉस के ठीक बगलवाले एक छोटे-से कमरे में घुस गया। काम के समय में वहीं चाय-कॉफी और कभी-कभार नाश्ते के आइटम बना करते थे।

साहिब को आज अपने कमरे में जाने की जल्दी नहीं थी, सो वह घूम-घूम कर ऑफिस का मुआयना करने लगा। एक बड़ा-सा हॉल-लगभग चालीस बाई साठ का, जिसमें छोटे-छोटे काँच के केबिन बने हुए थे। एडिटिंग, लायब्रेरी और स्टूडियो के लिए अलग-अलग कमरे थे। बॉस का कमरा मुख्य द्वार के बाईं ओर था। ऑफिस में तरह-तरह के बेलबूटे लटक रहे थे, बिल्कुल असल की तरह दिखते हुए। साहिब की नजर स्टूडियो के बाहर डिसप्ले बोर्ड पर गई, इसमें रोज के काम की सूचना होती थी। उसके नाम के आगे दो उत्पादों के नाम लिखे थे - एक, जूता और दूसरा, स्मृति बढ़ानेवाली केप्सूल। डिसप्ले बोर्ड में अमित मेहरा के जिम्मे कार के टायर थे, राजीव सक्सेना के जिम्मे शूटिंग-शर्टिंग और रोहित शर्मा के जिम्मे हाल ही में लांच होनेवाली एक कार थी।

डिस्प्ले बोर्ड में काम के बँटवारे को देख कर आज फिर साहिब सिंह का दिमाग सातवें आसमान पर पहुँच गया। उसने कल ही बॉस से कहा था कि वह कार की फिल्म बनाना चाहता है। बॉस जिस रहस्यात्मक ढंग से मुस्कुराया था उससे उसे आभास तो हो गया था कि काम का बँटवारा इस बार भी मन मुताबिक नहीं होगा, लेकिन इतने क्रूर तरीके

से होगा, उसने सोचा नहीं था। कार की फिल्म न सही, टायर की फिल्म तो दी ही जा सकती थी उसे। लेकिन वह भी न मिली, मिली तो जूते और थर्ड ग्रेड दवा की फिल्म। 'डेम इट', गुस्से से पैर पटकते हुए साहिब ने कहा और अपने केबिन में घुस गया।

साहिब सिंह की मेज पर संतोष ने कॉफी रख दी थी जो तेजी से ठंडी होती जा रही थी। कॉफी की गर्मी उसके दिमाग में उतरती चली गई। वह बड़ी बेसब्री से बॉस का इंतजार करने लगा। आज वह ठीक-ठीक और साफ-साफ बात करने का इरादा कर चुका था।

लगभग साढ़े ग्यारह बजे उसका बुलावा आया।

- मि. चौहान, आपने डिस्प्ले बोर्ड तो देख ही लिया होगा। ये दोनों फाइलें 'स्मृति वाटिका' और 'केयर शू' की हैं, और ये सी.डी.। इन्हें इस बार धाँसू एड चाहिए। पिछले कई सालों से हमारी राइवल ग्रुप इनके लिए एड बनाती रही है। इस बार इनके मार्केटिंग ग्रुप ने हमें चांस दिया है। यदि हमने ठीक काम किया तो हर साल टोटल इन्कम का टेन परसेंट इनसे ही मिल जाएगा। आप तो जानते ही हैं कि ये कितने बड़े ग्रुप हैं। एक बात और, जो खास तौर से इनकी फरमाइश है कि जूते की प्राइज चूँकि ब्रांडेड शूज से काफी कम हैं इसलिए इसे खास तौर से प्रोजेक्ट करना है, और दूसरी डिमांड ये है कि ये फिल्म आप ही बनाएँ, सो...

बॉस की बातों ने तपते हुए साहिब पर हल्की बारिश की ठंडी बूँदे बरसाईं जरूर, लेकिन इससे तपन खत्म तो नहीं हो सकती थी। हाँ उसमें कमी जरूर आई थी।

- सर, आज मैं कुछ बातें आपसे क्लिअर करना चाहता हूँ, उसने दृढ़ता और थोड़ी धृष्टता के साथ कहा।

बॉस उसे थोड़ी देर देखता रहा। इस बीच उसका चेहरा पहले कठोर हुआ और फिर व्यंग-मिश्रित।

- कहिए, आप क्या क्लिअर करना चाहते हैं?

- सर, मैंने आपसे कहा था कि मैं कार की एड फिल्म बनाना चाहता हूँ। इसके कुछ बेहतर आइडियाज भी मेरे पास हैं। मैंने रिक्वेस्ट भी की थी, लेकिन फिर भी आपने... आपने यह प्रोजेक्ट मि. रोहित शर्मा को दे दिया?

- लुक मि. एस.एस. चौहान, इस एजेंसी का बॉस होने के नाते मैं तुमसे बेहतर जानता हूँ कि कौन-सा प्रोजेक्ट किसे हैंडिल करना है। आखिर सेलेरी और कमीशन का

इंतजाम मुझे करना पड़ता है। और इन दोनों प्रोजेक्ट को करने में तुम्हें तकलीफ क्या है?

- तकलीफ... कुछ भी नहीं है और बहुत कुछ है...

- मि. चौहान, मि. चौहान..., डोंट बी पजल्ड... तुम इस एजेन्सी की एक इंटेलीजेंट पर्सेनिलिटी हो, मैं जानता हूँ कि कौन से काम तुम बेहतर कर सकते हो, सो डोंट वेस्ट यूवर टाइम। तुम आज से ही अपने प्रोजेक्ट में लग जाओ। और हाँ, ये कुछ सीडी हैं, जिसमें इन प्रोडक्ट्स पर बनी पहले की फिल्में हैं और साथ ही स्क्रैच फिल्में भी हैं, चाहो तो तुम इनसे गाइड लाइन ले सकते हो।

- सर आप मेरे काम करने के तरीके जानते हैं, मैं अपनी लाइन खुद तैयार करता हूँ।

- यस, आइ नो, बट इन्हें देखने में क्या बुराई है...

- ठीक है सर, मैं इन्हें रख लेता हूँ, मुझे लगता नहीं कि ये मेरी मदद करेंगे । फिर भी... लेकिन आज के टॉपिक पर मैं आपसे प्रोजेक्ट पूरा होने के बाद बात जरूर करूँगा सर ।

- एस यू विश मि. चौहान... बट दीज प्रोजेक्ट्स आर वेरी इंपोर्टेंट, सो बी केयरफुल एंड मोर क्रिएटिव... ओ.के.।

कुछ कहने के बजाय उसने सिर हिलाया।

साहिब को आज से ही अपने प्रोजेक्ट में जुट जाना था इसलिए अब उसका ऑफिस में रहना जरूरी नहीं था। उसके काम करने का अंदाज सभी जानते थे, उसके सहकर्मी और बॉस सभी...। प्रोजेक्ट का मतलब कम-से-कम दस दिनों तक मोबाइल पर रिपोर्ट देने के अलावा ऑफिस आने की जरूरत नहीं, बशर्ते कि पहले का कोई मामला अटक नहीं रहा हो।

साहिब सिंह ने लेपटॉप, सीडीस और फाइल बैग में भरे और ऑफिस से निकल ही रहा था कि बॉस का बुलावा आ गया।

- यस सर..., साहिब ने बॉस के केबिन में घुसते हुए पूछा।

- मि. चौहान, आप कह रहे थे कि कार के एड के लिए आपके पास कुछ बेहतर आइडियाज हैं, आप चाहें तो मि. रोहित शर्मा से अपने आइडियाज शेयर कर सकते हैं।

रोहित शर्मा उस समय बॉस के केबिन में ही था।

- नो सर, आई हैव नो आइडियाज...

- ओ.के. एज यू विश, बस एक बात का आप ध्यान रखें, वी आर नॉट कॉम्पटीटर्स, वी आर कलिग्स...

-यस सर, वी आर कलिग्स, वी आर नॉट कॉम्पटीटर्स...

साहिब सिंह ने जिस बाँकपन से अपनी बात कही थी, वह जाहिर तौर पर तिलमिलाने वाली थी।

- सर, मे आई गो नाउ?

- यस, यू कैन।

साहिब सिंह निकल आया। लिफ्ट से उतरते हुए उसे इस बात का हल्का-सा संतोष था कि आखिरकार उसने रोहित शर्मा को पब्लिकली जवाब देने का शुभारंभ कर दिया है।

दिन के डेढ़ बज रहे थे। मुंबई मस्त थी अपनी भीड़, अपने पसीने, अपनी गति और अपने शोर से। दुकानों, रेस्तराँओं, सड़कों, बसों पर मार तमाम लोग टूट पड़े थे। हर कोई भाग रहा था। लग रहा था दुनिया में आग लगी हुई है और लोग सुरक्षित स्थानों की खोज में भागे जा रहे हैं। लोगों के चेहरे बहुत निलते-जुलते थे। सबमें एक-सी हड़बड़ी, एक-सी भागमभाग, एक-सा लक्ष्य और एक-सा उद्देश्य। मुंबई एक जैसे लोगों का महानगर और इस महानगर के चौराहे पर एक खंबे की आड़ में खड़ा साहिब सिंह सोच रहा था कि पहले लंच कर ले या सीधे सुधीर के यहाँ जाए।

उसने फोन मिलाया - हैलो सुधीर, घर पर ही हो ना?

- नहीं,व्हाइट हाउस में हूँ और मोनिका डार्लिंग का इंतजार कर रहा हूँ..., सस्ते जासूसी उपन्यासों के नायकों की तरह सुधीर ने नाटकीय अंदाज में जवाब दिया।

- अबे मजाक मत कर, मुझे दो प्रोजेक्ट मिले हैं, उसी सिलसिले में तुझसे मिलना है।

- इसका मतलब दस दिन की मौज-मस्ती... जल्दी आ जा...

- अच्छा, खाने के लिए कुछ बना लेना। मैं एक घंटे में पहुँच रहा हूँ।

सुधीर राई, साहिब सिंह का परमानेंट कॉपीराइटर, अपनी तरह से मस्त-मलंग। मुंबई की गति को फुटबॉल की तरह उछालता हुआ। अपनी कम जरूरतों के कारण वह घुड़दौड़ से पूरी तरह बाहर था। हर तरह का काम करता था लेकिन किसी कंपनी से बँधा नहीं था। फ्रीलांसर। साहिब का एकमात्र दोस्त। दोस्तों की जिस भरी-पूरी दुनिया को साहिब सिंह दस साल पीछे छोड़ आया था, सुधीर उसी दुनिया का कोई भटका हुआ बाशिंदा था, जो रहता तो मुंबई में था लेकिन यहाँ की नागरिकता के लिए उसके मन में कोई रोमांच नहीं था। बिल्कुल खाड़ी देशों में रहनेवाले भारतीयों की तरह रहता था सुधीर। मुंबई में रहते हुए भी उससे निर्लिप्त!

साहिब सिंह जब सुधीर के फ्लैट में घुसा, पनीर चिली की खुशबू पूरे घर में तैर रही थी। सुधीर ने प्रश्न दागा - आज किस प्रोडक्ट के किस्मत की चाबी हुजूर को सौंपी गई है?

- साँस तो लेने दे यार।

- अबे, तो क्या मुंबई तुझे साँस भी लेने नहीं दे रही है जो यहाँ आ कर साँस लेना चाहता है? ले ले बेटा, जी भर कर ले ले, फ्री ऑफ कॉस्ट, इसी साँस के लिए ऑक्सीजन पार्लर में जाता तो दो सौ रुपए प्रति घंटे देने पड़ते।

- तो तू पाँच सौ ले ले यार, लेकिन जरा चैन से बैठने दे।

साहिब सिंह और सुधीर में दोस्ताना नोक-झोंक चलती रहती थी। साहिब सिंह को यहीं आ कर लगता था कि उसने थोड़ी देर के लिए दौड़ना स्थगित कर दिया है। लेकिन आज उसके जवाब में थोड़ी झल्लाहट थी।

- एनी थिंग राँग साहिब?

- नहीं यार, बल्कि कुछ कह नहीं सकता कि कुछ गलत है या नहीं।

- तू इत्मीनान से बैठ, मैं बीयर ले आता हूँ।

- यार आज मूड नहीं है, रात का हैंगओवर अब तक है।

- अबे तो तू मत पी।

सुधीर ने दो मग मेज पर रखे। एक में बीयर ढाला और दूसरे को खाली छोड़ दिया। फिर बड़ी-सी थाली में पनीर चिली भर कर ले आया। दोनों में औपचारिकता का कोई

संबंध नहीं था। सुधीर ने बीयर का एक बड़ा घूँट भरा, फिर पनीर का एक बड़ा टुकड़ा मुँह में रख कर चुभलाने लगा।

बहुत देर तक दोनों में कोई बातचीत नहीं हुई। इस बीच साहिब भी अपना गिलास भर कर खाली कर चुका था।

- प्रॉब्लम क्या है साहिब, टेल मी।

साहिब ने जवाब देने के बजाय सिगरेट सुलगा ली और लंबे-लंबे कश खींचने लगा। फिर उसने सिगरेट सुधीर की ओर बढ़ा दी।

- सुधीर, कुछ दिनों से मैं महसूस कर रहा हूँ कि जिन चीजों के एड मैं ज्यादा क्रिएटिव तरीके से बना सकता हूँ, वो प्रोजेक्ट मुझे नहीं दिए जाते। मुझे ऐसी चीजों के प्रोजेक्ट दिए जाते हैं जिनका संबंध लोवर या लोवर मिडिल क्लास से है। ठीक है, इनके एड को मैं ठीक-से हैंडिल कर पाता हूँ, लेकिन मैं कुछ काम ऐसे भी करना चाहता हूँ कि पैसों से भरी हुई जेबोंवाला कन्ज्यूमर बिना किसी कन्फ्यूजन के प्रोडक्ट की ओर खिंचा चला आए। मैंने जिस तरह के एड अब तक बनाए हैं उसमें जॉब सटिस्फेक्शन मुझे नहीं मिला है। हालाँकि मैं जानता हूँ कि मेरे कई एड बहुत पॉपुलर हैं, मार्केटिंग एंड एडवर्टिजमेंट की दुनिया में टेक्स्ट की हैसियत रखते हैं लेकिन सक्सेस को ही तो सटिस्फेक्शन नहीं कह सकते हैं ना? इन तीन सालों में, मैं मानता हूँ, कि सक्सेस को ही मैं इथिक्स समझता रहा हूँ, लेकिन अब लग रहा है कि कुछ गलत हो रहा है। यह एहसास परछाई की तरह मेरी सफलता से चिपक गया है। कई दिनों से मैं सो तक नहीं पा रहा हूँ ।

- साहिब, आज लगता है कि तू मेरी ट्रैक पर दौड़ रहा है। मेरे डिसिप्लेन को फॉलो कर रहा है। आज अचानक सालों बाद तुझे नैतिकता की याद कैसे हो आई? गाँव में सब ठीक तो है न? माँ से बात हुई?

- प्लीज सुधीर, बात मत बदल। मेरी बात का जवाब दे। मेरी एड एजेंसी भारत की सबसे ग्रोविंग एड एजेंसीज में से एक है और इसमें मेरा कंट्रीब्यूशन कम नहीं है। दूसरी कंपनियों से कई अच्छे ऑफर आ चुके हैं लेकिन मैंने 'न्यू एरा' नहीं छोड़ा। और इस बात को कंपनी में सभी जानते हैं लेकिन फिर भी काम मुझे मेरे मुताबिक नहीं मिलता। इस बार तो मैंने बकायदा डिमांड भी की थी। लेकिन जब मेरे डिमांड की कोई वैल्यू नहीं है तो मुझे यहाँ क्यों काम करना चाहिए?

- तुम क्या सोचते हो, यदि दूसरी जगह जाओगे तो सिचुएशन इससे अलग होंगे? हाँ, हो सकते हैं, यदि तुम इस देश से बाहर चले जाओ तो, लेकिन तुम्हारा जो विजन है, क्रिएशन है, वह जितना पावरफुल यहाँ है उतना बाहर भी होगा, यह फिलहाल दावे के साथ नहीं कहा जा सकता।

- तुम मेरी काबिलियत पर शक कर रहे हो सुधीर?

- मैं शक नहीं कर रहा हूँ सुधीर, जिस एरिया में तुम्हारी मास्टरी है उसकी याद दिला रहा हूँ। तुम अपने एरिया की खासियत को शायद ठीक-ठीक नहीं जानते। तुम्हारी ये बदकिस्मती ही कही जाएगी कि इसे तुम्हारा बॉस जानता है, कलिग्स जानते हैं, ऑफर देनेवाली दूसरी कंपनियाँ जानती हैं, मार्केटिंग कंपनियाँ और बड़े ग्रुप्स जानते हैं, लेकिन तुम नहीं जानते।

- तो अब कृपा करके ये बताओगे कि वो खासियत क्या है? वो कौन-सा एरिया है जो मेरा अपना है, जहाँ मैं इजिली प्ले करता हूँ?

- तो तू सचमुच अब तक नहीं जानता? बिना अपने एरिया को जाने मार्केटिंग की लाइन में आ गया था? साहिब, जिस दिन तू 'न्यू एरा' में इंटरव्यू के लिए गया था, उस दिन और भी तो काबिल लोग थे तेरे अलावा, अनुभवी और सीनियर, फिर तूझे ही क्यों लिया गया? क्या इस बारे में तूने कभी ठहर कर इत्मीनान से सोचा है?

- इसमें सोचना क्या है? मैं सबसे अधिक काबिल था, डिजर्व करता था।

- बस, यहीं तक सोच पाया। इससे आगे नहीं?

- यार, तू साफ-साफ बोल, कहना क्या चाहता है?

- साहिब, तुझे अपने एड में ऐसी कौन-सी बातें दिखाई पड़ती हैं जो तेरी अपनी हैं? आई मीन, जो तेरा अपना क्रिएशन है, तेरी अपनी आइडेंटिटी है?

- सुधीर प्लीज, बात मत बदल, मैं टोटली पजल्ड हूँ।

- नहीं, मैं बात नहीं बदल रहा हूँ, ज्यादा ठीक तरीके से उस पर आ रहा हूँ। तूने कभी अपने क्रिएशन के कलर्स को, बैकग्राउंड को, म्यूजिक को, कऽरेक्टर्स को, थीम लाइन और ड्रेस कोड को ध्यान से देखा है? उनमें एक रिद्म है, वे टोटली ट्यूंड हैं। उनमें आपस में कम्यूनिकेशन तो है ही, वे अपने दर्शक को कम्यूनिकेट भी होते हैं और उन्हें कन्ज्यूमर में कन्वर्ट भी करते हैं। तुमने कभी सोचा है कि ऐसा क्यों होता है?

- सोचा तो नहीं है, लेकिन तुम इसे मेरा सेंस ऑफ ह्यूमर कह सकते हो या शायद मेरा विजन...

- विजन तो है तुम्हारे पास, सेंस ऑफ ह्यूमर भी तगड़ा है, लेकिन असल चीज है तुम्हारा सोशल बैक ग्राउंड, तुम्हारा पास्ट। तुम अपने पास्ट से स्टोरी लेते हो, करेक्टर्स और कलर्स लेते हो, म्यूजिक लेते हो। ये तो भद्दे ढंग से दूसरे भी लेते हैं, लेकिन उनके टूल्स आपस में संवाद नहीं करते, जैसा कि तुम्हारे करते हैं।

- मैंने इस बारे में कभी इत्मीनान से सोचा नहीं है लेकिन अगर सचमुच ऐसा है तो ये मेरी क्वालिटी हुई। अब इस क्वालिटी पर बिलीव करके मुझे मेरे मन मुताबिक काम क्यों नहीं दिया जाता?

साहिब बार-बार घूम-फिर कर इसी प्रश्न पर आ जाता। यही वह बिंदु था, जहाँ पहुँच कर दोनों चुप हो जाते थे। दोनों के बीच यह प्रश्न तलवार की तरह लटक रहा था। इस तलवार की तीखी धार से दोनों के दिमाग जख्मी हो रहे थे। सुधीर के पास शब्द नहीं थे चीजों को साफ-साफ कहने के लिए। उसे अपनी सीमाओं का बोध हो रहा था। दरअसल स्थितियाँ एड फिल्मों की तरह ज्यादा आकर्षक और जड़ाऊ तरीके से कहने की नहीं थी। उसी रूप से कहने की थीं जैसे कि वे हैं। वह एक कामयाब कॉपीराइटर था, जो फिलवक्त महसूस कर रहा था कि चीजों को कलात्मक ढंग से कहना आसान होता है, बाजारू ढंग से कहना भी आसान होता है लेकिन नंगे रूप से कहना बहुत मुश्किल। उसे पहली बार लगा कि गुजरे कई-कई वर्षों से कोई बात उसने सीधी और साफ जुबान में नहीं कही। हाँ, सीधे और साफ तरीके से अपने को अलग रखा, निर्लिप्त रखा। लेकिन खुद को निर्लिप्त रखना और दूसरे के दर्द को एक साफ जुबान देना, दोनों में बहुत अंतर है।

बाहर मुंबई जगमगा रही थी। दिन की रौशनी में इस शहर को देखने से लगता ही नहीं है कि इसकी आँतों में इतने सारे बल्ब जगमगाने का इंतजार कर रहे हैं। सूरज का ढलना और बिजली का जागना, जैसे दिन की ड्यूटी बजानेवालों का लौटना और नाइट ड्यूटीवालों का काम पर डटना। हर जगह एक बेवजह चमकता हुआ उजाला। इस उजाले ने कितने कस्बों-गाँवों और शहरों की बिजली चुराई है इसका अंदाजा किसी को नहीं था। उनको तो कतई नहीं, जो रौशनी के इस घेरे में मैराथन दौड़ रहे थे। इसी दौड़ के दो दौड़ाक ट्रैक से थोड़ा हट कर अपनी गति, दूरी और सीमा को तौल रहे थे। और आश्चर्य कि उनके पास इस तौल का कोई पैमाना नहीं था।

- साहिब, तुम्हारी जाति क्या है?

एक खौलता हुआ प्रश्न अचानक कमरे में गिरा। उसकी गर्मी से कमरे की चीजें झुलसने लगीं। युगों-युगों से जिस खौफनाक जवाब का सामना साहिब के पूर्वज करते रहे थे, इस सवाल के उत्तर की जमीन पर घिसटते और रेंगते रहे थे, और जिसे साहिब पाँच साल पीछे छोड़ कर मुंबई की मायावी दौड़ का जाना-माना दौड़ाक हो गया था, जिस पर लोग दाँव लगाने लगे थे और यकीनन जीतते भी थे, आज उसी दौड़ाक पर दर्शक-दीर्घा से एक ने पत्थर की तरह यह प्रश्न फेंका था। पत्थर नहीं, मानो ज्वालामुखी का मुँह किसी ने फिर खोल दिया हो... 'तुम्हारी जाति क्या है?'

सूने कमरे में काँसे की थाली गिरी... एक तेज झन्नाटेदार आवाज... और क्रमशः फिर खामोशी का लौटना, धीरे-धीरे चीजों को अपनी जद में लेती हुई।

इस प्रश्न के बाद खामोशी बहुत देर तक वहाँ ठहरी रही। दोनों के पास फिलवक्त इतना साहस नहीं था कि उसे उघाड़ कर उसके भीतर की बजबजाती दुनिया को देख सकें। लेकिन इसे तोड़ना ही था। अब इससे किनारा करते हुए आगे निकल जाना नामुमकिन था। यह खामोशी तलवार की धार की खामोशी थी जिसे छूते ही इतिहास खून की बूँद की तरह टपक पड़ता था, या शायद पका हुआ फोड़ा, पिन चुभोते ही उछल कर बहता मवाद ! हाँ यह प्रश्न पका हुआ फोड़ा ही था - 'तुम्हारी जाति क्या है? ...तुम्हारी जाति क्या है? ...तुम्हारी जाति क्या है?'

अंततः खामोशी सुधीर ने ही तोड़ी - 'साहिब, तुम्हें शायद लगता होगा कि इस तेजी के शहर में जाति का सवाल, गुजरी सदी का दफन सवाल है। एजुकेशन, डिग्री, क्वालिटी और इफिसिएंसी ने इसे गौण कर दिया है। हाँ, किसी हद तक तुम ठीक हो, लेकिन जो सवाल मुख्य सड़क पर छाती ठोंक कर चलता था अब वह कई मामलों में सड़क के नीचे की सुरंग के भीतर लगातार चलता है, जैसे हमारी परछाई चलती है...

'...एक अजीब-सा देश और समाज है, जहाँ हम रहते हैं। यहाँ फायदा और सामाजिक श्रेष्ठता के बीच का समीकरण अब इतना कॉम्लीकेटेड हो गया है कि पता ही नहीं चलता कि कब काम फायदे को केंद्र में रख कर हो रहा है और कब जाति को। तुम अपने सोशल सिस्टम के भीतर से डेवलप हुई एक ऐसी पर्सेनिलिटी हो जो इस सिस्टम के कन्ज्यूमर से बेहतर डील कर सकता है। तुम उनकी साइकी को जानते हो और तुम्हें काम देनेवाले जानते हैं कि तुम उनकी साइकी को समझते हो। ये वो कन्ज्यूमर हैं जो पिछले बीस-पच्चीस सालों में पॉलिटिकल-सोशल चेंजेज के कारण अपनी बढ़ी हुई पर्चेजिंग कैपिसिटी के साथ कन्ज्यूमर में कन्वर्ट हुए हैं। इसलिए तुम्हें ऐसे एड दिए जाते हैं जो उनकी पर्चेजिंग कैपिसिटी के भीतर के उत्पाद को खरीदने के

लिए उन पर जोर डाले। हालाँकि इन सब चीजों से तुम्हारी क्रिएटिविटी कम नहीं हो जाती लेकिन काम का डिस्ट्रीब्यूशन, जिसे ले कर तुम इतने परेशान हो उसकी तह में यही बात है। पता नहीं, इतने दिनों तक काम करने के बावजूद तुमने इसे महसूस कैसे नहीं किया... जबकि मैं तो शुरू से जानता था...

कमरे में पूरी तरह अँधेरा फैल चुका था। साहिब सिंह को लग रहा था जैसे यह किसी सूखे कुएँ से आती हुई आवाज है ।

- मैं लाइट ऑन करता हूँ, सुधीर उठ ही रहा था कि साहिब ने कहा - रहने दो, जिस अँधेरे को मैं पूरी तरह भूल चुका था, उसके भीतर मैं इतना धँसा हुआ हूँ, इसका सचमुच मुझे एहसास ही नहीं था। अब बल्ब की रौशनी से अँधेरा जाएगा नहीं।

साहिब सिंह अँधेरे कमरे में ही उठा और दरवाजे खोल दिए। दरवाजे से रौशनी के कुछ छींटे आ कर कमरे में फैल गए। सुधीर ने उसकी जाती हुई पीठ देखी। उसने साहिब को रोकने की कोशिश नहीं की।

साहिब लौट रहा था और बरसों बाद उसे सातवीं कक्षा में पढ़ा हुआ इतिहास का वह पाठ याद आ रहा था जिसमें कलिंग-विजय के बाद अशोक लौटता है। क्या इतिहास अपने को बार-बार दोहराता है?

घड़ी रात के दस बजा रही थी। मुंबई रात के दस बजे की तरह ही थी, लोकल ट्रेन से लौटती हुई या लौट कर फिर से मुँह अँधेरे जागने की चिंता में डूबी हुई।

साहिब सिंह के भीतर भूकंप की-सी उथल-पुथल थी, जैसे किसी ने समुद्र को मथ दिया हो। भूचाल को अपने भीतर समेटे हुए वह अपने फ्लैट में घुसा। सुबह उसने बत्ती जलती छोड़ दी थी इसलिए फ्लैट के भीतर घुसते हुए उसका सामना अँधेरे से नहीं हुआ। लेकिन उस अँधेरे का क्या किया जाए जो उसके दिमाग, दिल और हड्डियों तक में उतर चुका था!

सदियों की थकान उसके जोड़ों में उतरती चली गई। इन तीन सालों में जरूरत से ज्यादा तेज चाल चलते हुए उसने सोचा था कि वह अपने ठिठुरे अतीत से काफी दूर आ चुका है लेकिन आज उसे पता चला कि वह एक भिन्न माहौल में कदम ताल कर रहा था। बहुत पहले पढ़ा हुआ विज्ञान का सबक उसे याद आ गया, यदि मनुष्य एक निश्चित दिशा में निश्चित गति से सफर कर रहा है और आधार विपरीत दिशा में उसी वेग से चल रहा है तो कुल सफर सिफर होगा, शून्य। तो उसका कुल जमा सफर शून्य

है, अब तक वह केवल चुहड़ा ही है जिसे गाँव के उस आवारा बनिए ने केवल इसलिए पीटा था कि उसने गंदे कुएँ का पानी पीने से इनकार कर दिया था। बीस साल हो गए थे इस घटना को। इस बीच वह कई बार गाँव गया। कानपुर से उतर कर अनिवार्यतः टैक्सी लेता और एक सौ साठ कि.मी. का सफर तय कर गाँव पहुचता। गाँव में पूछ-परख होती। छोटा भाई कानपुर में ही पढ़ रहा था, कम्प्यूटर इंजीनियरिंग के थर्ड इयर में। माँ-बाप गाँव में ही रहते थे। लाख चाहने के बावजूद बहन प्राइवेट बी.ए. से अधिक नहीं पढ़ पाई। अब गाँव में उसका पक्का मकान था। वह इधर-उधर घूम-घूम कर लोगों से मिलता था।

कितना बदल गया था माहौल। बनिए का लड़का अब भी गाँव में था। एक परचून की दुकान उसने खोल ली थी। आटा-दाल-चावल तौलते हुए वह भी तराजू की तरह दिखने लगा था, बेडोल और जंग खाया हुआ। मिसिर जी अपने लड़के के लिए मुंबई में कोई ठीक-ठाक काम देखने की संयमित गुहार लगा चुके थे। हामी भरते हुए साहिब सिंह को स्वर्गिक आनंद मिलता था। यकीनन उसने सफर तय किया था, माहौल बदला था, लेकिन जिस तेजी से दुनिया बदलती थी उस तेजी से विचार नहीं। सबसे अधिक सुख तो उसे तब मिला था जब उसने पक्का मकान गाँव में बनवाया था और मुख्य द्वार पर लगने वाली ग्रेनाइट पट्टी में अपने पिता का नाम खुदवाया था - 'किशन सिंह चौहान'। पिता चौंक पड़े थे - किशन सिंह चौहान, ये किसका नाम है? अकबका कर पिता ने पूछा था और खुद ही झेंप गए थे। किसना से किशन सिंह चौहान होना आसान नहीं था पिता के लिए। लेकिन साहिब ने यह मुमकिन कर दिखाया था और इसके पीछे उसकी अथक दौड़ थी।

साहिब सिंह ने अपने दुखते-रिसते दिनों और बजबजाते घावों पर स्वप्निल गति की चादर डाल दी थी लेकिन आज उसी स्वप्न की तीखी रोशनी में छुपे अँधेरे से बिद्ध हो कर उसने महसूस किया कि उसके साथ धोखा हुआ है। धोखा... धोखा... धोखा... यही शब्द उसके दिमाग में गूँज रहा था।

साहिब पलँग पर सीधा लेटा हुआ था। आँखें छत से लगी हुई... खुली या बंद होने का कोई अर्थ नहीं...। उसे गत तीन वर्षों का 'न्यू एरा' फिर से याद आने लगा, खासकर पिछला पूरा साल... जब वह अपनी मौजूदा काबिलियत के शीर्ष पर पहुँचा था। एजेंसी के भीतर उसे घूरती हुई वो चोर आँखें, जिनमें मजाक और उपेक्षा के मिले-जुले भाव थे। एक बड़ी कंपनी के कम कीमतवाले मोबाइल हैंडसैट का विज्ञापन खास तौर पर उसे दिया गया था। उसने जो फिल्म बनाई थी, मार्केटिंग लाइन में उसके टक्कर की दूसरी फिल्म नहीं थी... ऊँट पर बैठा हुआ मरुस्थली सरहदों की सुरक्षा में मुस्तैद सेना

का जवान गाँव में एक जर्जर कुएँ से पानी भर रही अपनी पत्नी से प्रेम भरी बातें कर रहा है और नीचे थीम लाइन - 'प्यार में पैसा कभी रुकावट न हो... इन्हें भी प्यार का अधिकार है...।' इस फिल्म के लिए उसने उत्तर भारत के लोक संगीत, राजस्थानी परिधान और ठेठ गँवई बोली का इस्तेमाल बड़ी खूबसूरती से किया था और खासतौर से कैमरे को पक्के कुएँ से कच्चे कुएँ की ओर मूव करवाया था। पूरी बात के दौरान पक्का कुआँ धुँधले रूप में बैकग्राउंड में उपस्थित था, जहाँ कुछ संभ्रांत-सी ग्रामीण औरतें पानी भर रही थीं।

इस विज्ञापन से मोबाइल की बिक्री पर बेहतरीन असर हुआ था और कंपनी को करोड़ों का फायदा भी हुआ था। उसकी इस सफलता पर रोहित शर्मा की बधाई उसे खास तौर पर याद आ रही थी - 'यार... बहुत खूब... इसे तुम्हारे जैसा आदमी ही बना सकता है, अपनी तो मजबूरी है। क्या खूब थीम लाइन है... इन्हें भी प्यार का अधिकार है... वाह खूब... कॉन्ग्रेट्स...', हाँ, यही कहा था उसने... इसे मेरे जैसा आदमी ही बना सकता है... मेरे जैसा मतलब... मतलब मेरे जैसा..., तभी उसकी आँखें वही नहीं कह रही थीं जो उसकी जुबान। और अमित मेहरा, एजेंसी की इस सफलता पर उसकी टिप्पणी - 'यार अच्छा हुआ जो तुम यू.पी. में पैदा हुए... नहीं तो कंपनी का भट्ठा बैठ गया होता...।' और बॉस की समझाइश - 'मि. चौहान, कोशिश करो कि थीम लाइन तुम्हारी अपनी सोसायटी को बिलांग करे...' 'सोसायटी' सुन कर मुझे थोड़ा खटका लगा था, बॉस ने भी थोड़ा हकलाते हुए कहा था, फिर बात को सँभालते हुए लीपा-पोती... 'न्यू एरा में न्यू कंज्यूमर को तलाशने और उन्हें प्रोडक्ट के पक्ष में लाने की मास्टरी तुम्हारे अलावा किसी दूसरे के पास नहीं है...' तो ये तारीफ, तारीफ नहीं बल्कि चालाकियाँ थीं! नए समय के मार्केटिंग की मक्कारियाँ!

साहिब का चित्त तूफान में फँसे जहाज की तरह डोल रहा था। उसकी सफलता जहाज के उस मस्तूल की तरह थी, जिसे भयंकर जहरीले कीड़े अंदर ही अंदर खोखला किए जा रहे हों और वह इससे सर्वथा अनजान, जहाज की गति और विशाल नीले समुद्र में जहाज के लगातार तैरते जाने की सफलता के नशे में मस्त हो। जहरीले कीड़े मस्तूल को कुतरते जा रहे थे... किर्र... किर्र...किर्र...। उसे फिर वही आवाज सुनाई पड़ी जो जहाज से नहीं उसके पलँग से आ रही थी... किर्र...किर्र...किर्र...

उस खौफनाक आवाज में उस बजबजाती दुनिया की प्रतिध्वनियाँ छिपी थीं, जिससे फौरी तौर पर वह मुक्त हो गया था। बहुत पहले, बचपन में... जब उसकी फूस की घर की छप्पर मोटी बल्लियों पर टिकी थी... ठंड की रात में अक्सर उसकी नींद खुल जाती थी और उस सन्नाटे में घर में यही किर्र-किर्र गूँजती रहती, जो झींगुरों की आवाज से

मिल कर और भी खतरनाक लगती। उसके पूरे घर को घुन खाए जा रहा था। बारिश की बूँदों की तरह छत से सफेद पाउडर टपकता रहता था इसलिए उन्हें अपना खाना बाहर खाना पड़ता था। वह अक्सर कोशिश करता कि सन्नाटे के पसरने से पहले ही वह सो जाए। जल्दी सोने के कारण देर रात उसकी नींद खुल जाती और फिर लगातार किर्र...किर्र...किर्र...। डर कर वह दादी से लिपट जाता। पिता ने बारिश से पहले छानी बदल देने की बहुत कोशिश की थी लेकिन नहीं हो पाया। और आखिरकार एक तूफानी बारिश की रात में उनकी छत ढह गई थी। उस रात घर के बचे-खुचे सामानों को बचाने की फिक्र में सभी लोग रात भर भीगते रहे थे। दादी उसके बाद जो बीमार पड़ी तो फिर अच्छी न हो पाई। काँपते-काँखते उसने हमेशा के लिए आँखें मूँद ली। आवाजें कैसे बीते हुए समय के सामने आदमी को ला पटकती है, वह अब महसूस कर रहा था।

- तो क्या वह वापिस लौट जाए? उसने सोचा, सोचा नहीं, बल्कि अपने आप से ही पूछा।

- लेकिन इससे क्या बदल जाएगा? सवाल के जरिए ही अपने आप को उसने जवाब दिया।

- क्या वह खुद वही नहीं कर रहा है जो दूसरे चालाक लोग करते हैं? उसने फिर पूछा।

- क्या चालाक लोगों को जवाब देने के लिए हर किसी को इस चालाक दुनिया से बाहर चले जाना चाहिए? फिर प्रश्न की शक्ल में एक और जवाब।

- तो अब मैं क्या करूँ? एक प्रश्न और।

अब कोई जवाब नहीं... खामोशी...

खामोशी के भीतर चहलकदमी करते हुए उसने घुन को दृश्य रूप देने की कोशिश की। घुन की सूरत उसे अमित मेहरा से मिलती-जुलती लगी, रोहित शर्मा का चेहरा भी उसी की तरह था, ऑफिस के दूसरे स्टॉफ भी उसे घुन की तरह ही लग रहे थे। अचानक वह उठा और कॉपी-पेन ले कर स्केचिंग करने लगा। डेढ़-दो घंटे वह लगातार काम में डूबा रहा। उसकी कॉपी में जूते के कई कार्टून थे। खतरनाक जूते, जो पाँवों को काट रहे थे। किसी जूते का कार्टून अमित मेहरा से मिलता था, कोई बॉस की तरह था, कोई रोहित शर्मा की तरह। ये सभी संभ्रांत किस्म के जूते थे। एक जूता तुड़ा-मुड़ा-सा, फिर भी मुस्कुराता हुआ-सा था, जो संतोष की तरह लग रहा था। उसके बाद एक बहुत मुलायम-मुलायम, प्यारा-सा जूता था, जो पाँवों को प्यार कर रहा था। पाँव की शक्ल

अभी-अभी जन्में एक बच्चे की तरह थी और इस जूते का चेहरा साहिब के अपने पिता की तरह था। उसके नीचे एक वाक्य लिखा था- 'जूता, जो पाँव से प्यार करे।'

अपनी पूरी नफरत और की गई ज्यादतियों को निचोड़ कर उसने 'केयर शू' के विज्ञापन की आउट-लाइन तैयार कर ली थी। अब उसे केवल सुधीर की मदद से रूप देना था। इसे वह एनीमेशन या क्ले-आर्ट के जरिए बनाना चाहता था।

ठीक है, साहिब ने खुद को समझाया, अभी तो यह समुद्र पार के दुश्मनों की मदद करना ही है। लेकिन इस मदद में कुछ दूसरे खतरनाक दुश्मनों की शिनाख्त हो जाएगी। फिलहाल तो इतना ही काफी है। बाकी आगे देखा जाएगा।

रात के दो बज रहे थे। साहिब ने बाल्कनी में खड़े हो कर मुंबई के सूरते-हाल को निहारा। सोए हुए शहर के भीतर हलचलें अब भी जीवित थीं।